क़ुव्वत का अस्ल राज़

मौलाना सैयद अबुल-आला मौदूदी

अनुवाद

मुहम्मद अली शाह शुऐब

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

'अल्लाह के नाम से जो बड़ा कृपाशील, अत्यन्त दयावान है।'

क़ुव्वत का असल राज़

दूसरी सदी हिजरी के शुरू का वाक़िआ (घटना) है कि सजिस्तान (मौजूदा अफ़ग़ानिस्तान) और रंज के हाकिम (शासक) ने, जिसका ख़ानदानी लक़ब रुत्बील था, बनी-उमैया के अधिकारियों को ख़िराज (Tax) देना बन्द कर दिया, लगातार चढ़ाइयाँ की गईं, मगर वह अधीन नहीं हुआ। यज़ीद-बिन-अब्दुल मलिक उमवी के दौरे-हुकूमत (शासन-काल) में जब उसके पास ख़िराज (कर) वुसूल करने के लिए नुमाइन्दे भेजे गए तो उसने मुसलमानों के नुमाइन्दों से पूछा—

"वे लोग कहाँ गए जो पहले आया करते थे? उनके पेट फ़ाक़ा करनेवालों की तरह पिचके हुए थे। पेशानियों पर स्याह गट्टे पड़े रहते थे और वे खजूरों की चप्पलें पहना करते थे।"

कहा गया कि वे लोग तो गुज़र गए।

रुत्बील ने कहा—

"हालाँकि तुम्हारी सूरतें उनसे ज़्यादा शानदार हैं, मगर वे तुमसे अधिक वादे के पाबन्द थे। तुमसे ज़्यादा ताक़तवर थे।"

इतिहासकार लिखता है कि यह कहकर रुत्बील ने ख़िराज (कर) देने से इनकार कर दिया और लगभग 50 सालों तक वह इस्लामी हुकूमत से आज़ाद रहा।

यह उस दौर का वाक़िआ है जब ताबेईन और तबअ ताबेईन (सहाबा के बाद के दौर के मुसलमान) काफ़ी तादाद में मौजूद थे। इज्तिहाद करने-वाले इमामों और आलिमों का ज़माना था। प्यारे नबी (सल्ल॰) को दुनिया से रुख़सत (विदा) हुए एक सदी ही गुज़री थी। मुसलमान एक ज़िन्दा और

ताक़तवर क़ौम की हैसियत से दुनिया पर छा रहे थे। ईरान, रूम, मिस्र, अफ़्रीक़ा, स्पेन वग़ैरह देशों पर उनकी हुकूमत थी और साज़ो-सामान, शानो-शौकत और दौलत के एतिबार से उस समय दुनिया की कोई क़ौम उनके बराबर नहीं थी। यह सब कुछ था। दिलों में ईमान भी था। शरीअत के हुक्मों की पाबन्दी अब से बहुत अधिक थी, सुनने और इताअत करने का निज़ाम क़ायम था। पूरी क़ौम में एक ज़बरदस्त डिसिप्लिन और अनुशासन पाया जाता था, फिर भी जो लोग सहाबा के दौर के फ़ाक़ाकश, ख़स्ताहाल सहरा-नशीन लोगों से ज़ोर आज़माई कर चुके थे उन्होंने उन सरो-सामानवालों और उन बेसरो-सामानवालों के बीच ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ महसूस किया। यह किस चीज़ का फ़र्क़ था? इतिहास के फ़लसफ़ेवाले इसको सिर्फ़ देहात और शहरीयत का फ़र्क़ समझेंगे। वे कहेंगे कि पुराने लोग जंगलों की ख़ाक छानते फिरनेवाले और मेहनत करनेवाले थे और बाद के लोगों को दौलत और तमद्दुन (रहन-सहन के तौर-तरीक़ों) ने उन्हें ऐश- पसन्द बना दिया था। मगर मैं यह कहूँगा कि यह फ़र्क़ असल में ईमान, ख़ुलूस नीयत, अख़लाक़ (आचरण) और अल्लाह की फ़रमाँबरदारी का फ़र्क़ था। मुसलमानो की असली क़ुव्वत यही चीज़ें थीं, उनकी ताक़त की बुनियाद न तो तादाद के ज़्यादा होने पर थी, न असबाब (धन) और आलात (संसाधन और हथियार) और न माल-दौलत की अधिकता पर, न इल्म (शिक्षा) और उद्योग धन्धों में महारत पर और न रहन-सहन के बेहतरीन और आलीशान तौर-तरीक़ों पर। ये सिर्फ़ ईमान और नेक कामों के बल पर उभरे थे। इसी चीज़ ने उनको दुनिया में सरबुलन्द किया था। इसी चीज़ ने क़ौमों के दिलों में उनकी धाक बिठा दी थी। जब क़ुव्वत और इज़्ज़त का सरमाया उनके पास था तो ये तादाद में कम होने और बेसरो-सामानी के बावजूद ताक़तवर और इज़्ज़तवाले थे और जब यह सरमाया उनके पास कम हो गया तो ये तादाद में ज़्यादा और सरो-सामान की अधिकता के बावजूद कमज़ोर और बेवज़न होते चले गए।

रुत्बील ने एक दुश्मन की हैसियत से जो कुछ कहा वह दोस्तों और नसीहत करनेवालों के हज़ारों उपदेशों से ज़्यादा सबक़-आमोज़ (शिक्षाप्रद

है। उसने अस्ल में यह हक़ीक़त बयान की थी कि किसी क़ौम की असली ताक़त उसकी हथियारबन्द फ़ौजें, उसके जंगी हथियार, उसके ख़ूबसूरत और अच्छी वर्दीवाले सिपाही और उसके संसाधनों की अधिकता नहीं हैं, बल्कि उसके पाकीज़ा अख़लाक़ (आचरण), उसके मज़बूत चरित्र, उसके सही मामले और उसके उच्च विचार हैं। यह ताक़त वह रूहानी ताक़त है जो भौतिक संसाधनों के बिना दुनिया में अपना सिक्का चला देती है। ज़मीन पर बैठनेवालों को तख़्त पर बैठनेवालों पर ग़ालिब कर देती है। सिर्फ़ ज़मीन का वारिस ही नहीं बल्कि दिलों का मालिक भी बना देती है। इस ताक़त के साथ खजूर की चप्पलें पहननेवाले, सूखी हड्डियोंवाले, बेरौनक़ (तेजहीन) चेहरोंवाले, चीथड़ों में लिपटी हुई तलवारें रखनेवाले लोग दुनिया पर वह धाक, दबदबा, बड़ाई, क़द्र, सम्मान, भरोसा और ताक़त जमा देते हैं जो इस ताक़त के बग़ैर शानदार लिबास पहननेवाले, बड़े डील-डौलवाले, बारौनक़ चेहरेवाले, बड़े-बड़े दरबारोंवाले, बड़ी-बड़ी तोपें और हौलनाक दब्बाबे (टैंक) रखनेवाले नहीं जमा सकते। अख़लाक़ी ताक़त की अधिकता, भौतिक संसाधनों की कमी को पूरा कभी नहीं कर सकती। इस ताक़त के बग़ैर सिर्फ़ भौतिक संसाधन के साथ अगर ग़लबा नसीब हो भी गया तो नामुकम्मल (अपूर्ण) और वक़्ती होगा, मुकम्मल (पूर्ण) और पायदार न होगा। दिल कभी उसके अधीन नहीं होंगे, सिर्फ़ गर्दनें झुक जाएँगी और वे भी अकड़ने के पहले मौक़े से फ़ायदा उठाने के लिए तैयार रहेंगी।

किसी इमारत की मज़बूती उसके रंग-रौग़न, नक़्श- निगारी, सजावट, आँगन, बाग़ीचे और ज़ाहिरी ख़ुशनुमाई से नहीं होता। न मकान में रहनेवालों की अधिकता, न साज़ो-सामान की बहुतायत और संसाधनों तथा जंगी हथियारों की प्रचुरता इसको मज़बूत बनाती है। अगर उसकी बुनियादें कमज़ोर हों, दीवारें खोखली हों, सुतूनों को घुन लग जाएँ, कड़ियाँ और तख़्ते बोसीदा हो जाएँ तो उसको गिरने से कोई चीज़ नहीं बचा सकती, चाहे वह इमारत रहनेवालों से ख़ूब भरी हुई हो और उसमें करोड़ों रुपये का माल और सामान भरा पड़ा हो और उसकी सजावट नज़रों को लुभाती और मन को मोह लेती हो। तुम सिर्फ़ ज़ाहिर को देखते हो, तुम्हारी नज़रें बाहरी चीज़ों पर

अटक कर रह जाती हैं। मगर दुनिया में पेश आनेवाली घटनाओं का मामला बाहरी दिखावे से नहीं बल्कि अन्दरूनी हक़ीक़तों से पेश आता है। वे इमारत की बुनियादों से जूझती हैं, दीवारों की मज़बूती का इम्तिहान लेती हैं, सुतूनों की दुरुस्ती और पायदारी को जाँचती हैं। अगर ये चीज़ें मज़बूत और पुख़्ता (ठोस) हों तो ज़माने के हादिसे (दुर्घटनाएँ) ऐसी इमारत से टकराकर पलट जाएँगे और वह उन पर ग़ालिब आ जाएगी, चाहे उसमें ज़ीनत और सजावट बिल्कुल न हो। अगर ऐसा न हो तो हादिसों के थेपेड़े आख़िरकार उसको टुकड़े-टुकड़े करके रहेंगे और वे अपने साथ रहनेवालों और साज-सज्जा के साधनों को भी ले बैठेगी।

ठीक यही हाल क़ौम की ज़िन्दगी का भी है। एक क़ौम को जो चीज़ ज़िन्दा, ताक़तवर और सरबुलन्द बनाती है वह उसके मकान, उसके लिबास, उसकी सवारियाँ, उसकी ऐशो-आराम की चीज़ें, उसके कला-साहित्य, उसके कारख़ाने और उसके कॉलेज नहीं हैं बल्कि वे उसूल हैं जिनपर उसकी तहज़ीब और संस्कृति क़ायम होती है और फिर उन उसूलों का दिलों में बैठ जाना और आमाल पर हुक्मराँ (शासक) बन जाना है। ये तीन चीज़ें यानी उसूलों का अच्छा होना, उनपर मज़बूत ईमान और अमली ज़िन्दगी पर उनकी मुकम्मल हुकूमत, क़ौम की ज़िन्दगी में वही हैसियत रखती है जो एक इमारत में उसकी मज़बूत बुनियादों, उसकी पुख़्ता दीवारों और उसके मज़बूत सुतूनों की है। जिस क़ौम में ये तीनों चीज़ें पूरे तौर पर मौजूद हों वह दुनिया पर ग़ालिब होकर रहेगी। उसका बोल-बाला होगा, अल्लाह की ज़मीन पर उसका सिक्का चलेगा, दिलों में उसकी धाक बैठेगी, गर्दनें उसके हुक्म के आगे झुक जाएँगी और उसकी इज़्ज़त होगी, चाहे वह झोंपड़ियों में रहती हो। फटे-पुराने कपड़े पहनती हो, फ़ाक़ों से उसके पेट पिचके हुए हों, उसके यहाँ एक भी कॉलेज न हो, उसकी बस्तियों में एक भी धुआँ उड़ानेवाली चिमनी नज़र न आए और तालीम और उद्योग-धन्धों में बिल्कुल ज़ीरो हो। तुम जिन चीज़ों को तरक़्क़ी का साधन समझ रहे हो वे सिर्फ़ इमारत की सजावट हैं, उसके सुतून और बुनियादें नहीं हैं। खोखली दीवारों पर अगर सोने के पत्रे चढ़वा दोगे तो वे पत्रे उन दीवारों को गिरने से न बचा सकेंगे।

यही बात है जिसको क़ुरआन मजीद बार-बार बयान करता है।

वह इस्लाम के उसूलों के बारे में कहता है कि वे उस अटल और न बदलनेवाली फ़ितरत (प्रकृति) के मुताबिक़ हैं जिसपर ख़ुदा ने इनसान को पैदा किया है। इसलिए जो दीन इन उसूलों पर क़ायम किया गया है वह दीन ऐसा दीन है जो दुनिया और आख़िरत के तमाम मामलों को ठीक-ठीक तरीक़ों पर क़ायम कर देनेवाला है। क़ुरआन में है—

"तो (ऐ नबी और उसके अनुयायियों!) यकसू (एकाग्र) होकर अपना रुख़ (ध्यान) इस दीन की तरफ़ जमा दो, क़ायम हो जाओ उस फ़ितरत पर जिसपर अल्लाह ने इनसानों को पैदा किया है, अल्लाह की बनाई संरचना बदली नहीं जा सकती। यही बिल्कुल सीधा और ठीक दीन है, मगर ज़्यादातर लोग जानते नहीं हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-30, अर-रूम, आयत-30)

फिर वह कहता है कि ठीक तरीक़े पर क़ायम दीन पर मज़बूती के साथ जम जाओ, इस पर ईमान लाओ और इसके मुताबिक़ अमल करो। इसका नतीजा ख़ुद-ब-ख़ुद यह ज़ाहिर होगा कि दुनिया में तुम ही सरबुलन्द होगे, तुम ही को ज़मीन का वारिस बनाया जाएगा, तुम ही ज़मीन पर ख़िलाफ़त (शासक) के पद पर विराजमान होगे।

"...ज़मीन के वारिस हमारे नेक बन्दे होंगे।"

(क़ुरआन, सूरा-21, अल-अंबिया, आयत-105)

"तुम ही ग़ालिब रहोगे अगर तुम ईमानवाले हो।"

(क़ुरआन, सूरा-3, आले-इमरान, आयत-139)

"अल्लाह ने वादा किया है कि तुममें से उन लोगों के साथ जो ईमान लाएँ और अच्छे काम करें, वह उनको उसी तरह ज़मीन में ख़लीफ़ा बनाएगा जिस तरह उनसे पहले गुज़रे हुए लोगों को बना चुका है।" (क़ुरआन, सूरा-24, अन-नूर, आयत-55)

"जो अल्लाह और उसके रसूल और ईमानवालों को अपना दोस्त बना ले उसे मालूम हो कि अल्लाह की जमाअत ही ग़ालिब

होकर रहनेवाली है।" (क़ुरआन, सूरा-5, आयत-56)

इसके बरख़िलाफ़ जो लोग देखने में तो दीन के दायरे में दाख़िल हैं, मगर दीन न तो उनके दिलों में बैठा है और न उनकी ज़िन्दगी का क़ानून बना है, उनके ज़ाहिर तो बहुत शानदार हैं, "और जब तुम इन्हें देखो तो इनके डील-डौल तुम्हें बड़े शानदार दिखाई दें।" (क़ुरआन) और इनकी बातें बहुत मज़ेदार हैं, "और जब वे बोलें तो इनकी बातें सुनते रह जाओ।" (क़ुरआन) मगर हक़ीक़त में वे लकड़ी के कुन्दे हैं। (क़ुरआन) जिनमें जान नहीं है। वे ख़ुदा से बढ़कर इनसानों से डरते हैं "वे लोगों से ऐसे डरते हैं जैसे ख़ुदा से डरना चाहिए, बल्कि उससे भी ज़्यादा डरते हैं।" (क़ुरआन)...उनके कर्म सराब (मरीचिका) की तरह हैं कि देखने में पानी नज़र आएँ मगर हक़ीक़त में कुछ नहीं। ऐसे लोगों को इज्तिमाई क़ुव्वत कभी नसीब नहीं हो सकती, क्योंकि उनके दिल आपस में फटे हुए होते हैं और वे ख़ुलूस नीयत के साथ किसी काम में भी शरीक नहीं बन सकते। (क़ुरआन) उनको वह क़ुव्वत हरगिज़ हासिल नहीं हो सकती जो सिर्फ़ नेक ईमानवालों का हिस्सा है। (क़ुरआन) उनको दुनिया की इमामत और रहनुमाई का मंसब कभी नहीं मिलेगा। (क़ुरआन) उनके लिए इसके सिवा कुछ नहीं कि वे दुनिया में भी बेइज़्ज़त और रुसवा हों और आख़िरत में भी अज़ाब और यातना उनको मिले। (क़ुरआन)

आप हैरत करेंगे कि क़ुरआन ने मुसलमानों की तरक़्क़ी और उनके एक हुक्मराँ जमाअत बनने और ग़ालिब आ जाने का ज़रीआ सिर्फ़ ईमान और नेक अमल को ठहराया और कहीं यह नहीं कहा कि तुम युनिवर्सिटियाँ बनाओ, कॉलेज खोलो, कारख़ाने क़ायम करो, जहाज़ बनाओ, कम्पनियाँ क़ायम करो, बैंक खोलो, साइंस के उपकरणों (आलात) का आविष्कार करो और लिबास, रहन-सहन के तौर-तरीक़ों में तरक़्क़ीयाफ़्ता (उन्नतिशील) क़ौमों की नक़ल करो। और यह कि उसने गिरावट और पस्ती और दुनिया व आख़िरत की बेइज़्ज़ती व रुसवाई का अकेला एक सबब (कारण) भी निफ़ाक़ (कपटाचार) को ठहराया न कि उन साधनों की क़मी को जिन्हें आजकल दुनिया तरक़्क़ी का साधन समझती है।

लेकिन अगर आप क़ुरआन की स्प्रिट को समझ लें तो आपका यह ताज्जुब अपने-आप ख़त्म हो जाएगा। सबसे पहली बात जिसका समझना ज़रूरी है यह है कि 'मुसलमान' जिस चीज़ का नाम है उसका मूल तत्व इस्लाम के सिवा कोई चीज़ नहीं है। मुस्लिम होने की हैसियत से उसकी हक़ीक़त सिर्फ़ इस्लाम से साबित होती है। अगर वह इस सन्देश पर ईमान रखे जो मुहम्मद (सल्ल॰) लाए हैं और उन क़ानूनों का पालन करे जिनको प्यारे नबी (सल्ल॰) के ज़रीए उतारा गया है तो उसके इस्लाम की पुष्टि हो जाएगी चाहे वह उन चीज़ों में से कोई चीज़ उसके साथ शामिल न हो जो इस्लाम के अलावा हैं। इसके बरख़िलाफ़ (विपरीत) अगर वह उन तमाम ज़ेवरों से सज्जित ज़िन्दगी की साज-सज्जा की क़िस्म की हैं मगर ईमान उसके दिल में न हो और इस्लामी क़ानूनों के पालन से उसकी ज़िन्दगी ख़ाली हो तो वह ग्रेजुएट हो सकता है, डॉक्टर हो सकता है, कारख़ानेदार हो सकता है, बैंकर हो सकता है, कमाण्डर या हाकिम हो सकता है, मगर मुसलमान नहीं हो सकता। इसलिए कोई तरक़्क़ी किसी मुसलमान शख़्स या क़ौम की तरक़्क़ी न होगी जब तक कि सब चीज़ों से पहले उस शख़्स या क़ौम में इस्लाम मौजूद न हो जाए। इसके बग़ैर वह तरक़्क़ी चाहे कैसी ही तरक़्क़ी हो मुसलमान की तरक़्क़ी न होगी और ऐसी तरक़्क़ी ज़ाहिर है कि इस्लाम का मक़सद नहीं हो सकती।

फिर एक बात तो यह है कि कोई क़ौम सिरे से मुसलमान न हो और उसके विचारों और अख़्लाक़ और इज्तिमाई निज़ाम की बुनियाद इस्लाम के सिवा किसी और चीज़ पर हो। ऐसी क़ौम के लिए निस्सन्देह यह मुमकिन है कि वह उन अख़लाक़ी, सियासी, मआशी (आर्थिक) और समाजी उसूलों पर खड़ी हो सके जो इस्लाम से मुख़्तलिफ़ हैं और उस तरक़्क़ी की इन्तिहा को पहुँच जाए जिसको वह अपने नज़रिए (दृष्टिकोण) से तरक़्क़ी समझती हो। लेकिन यह बिल्कुल एक दूसरी बात है कि किसी क़ौम के विचार, अख़्लाक़, तमद्दुन (संस्कृति) रहन-सहन, सामाजिकता, मईशत और सियासत की बुनियाद इस्लाम पर हो और इस्लाम में वह अक़ीदे और अमल दोनों के लिहाज़ से कमज़ोर हो। ऐसी क़ौम माद्दी (भौतिक) तरक़्क़ी के साधन चाहे

कितनी ही अधिकता के साथ जुटा ले, लेकिन उसका एक मज़बूत औ ताक़तवर क़ौम की हैसियत से उठना और दुनिया में सरबुलन्द होना बिल्कुल नामुमकिन है। क्योंकि उसकी क़ौमियत और उसके अख़लाक़ और उसकी तहज़ीब की बुनियाद जिस चीज़ पर है वही कमज़ोर है और बुनियाद की कमज़ोरी ऐसी है जिसकी भरपाई सिर्फ़ ऊपरी साज-सज्जा के सामान से कभी नहीं कर सकते।

इसका यह मतलब नहीं है कि तालीम और फ़न (कला) एवं साहित्य और भौतिक तरक़्क़ी के साधन की जायज़ अहमियत से इनकार है। मतलब सिर्फ़ यह है कि मुसलमान क़ौम के लिए ये तमाम चीज़ें दूसरे दर्जे पर हैं। बुनियाद की मज़बूती इन सबपर मुक़द्दम (प्राथमिकता रखती) है। वह जब मज़बूत हो जाए तो माद्दी तरक़्क़ी के वे तमाम साधन इख़्तियार किए जा सकते हैं और किए जाने चाहिएँ जो इस बुनियाद के साथ मुनासिबत (अनुकूलता) रखते हों। लेकिन अगर वही शिथिल और सुस्त हो, दिल में उसी की जड़ें कमज़ोर हों और ज़िन्दगी पर उसी की पकड़ ढीली हो तो इन्फ़िरादी (व्यक्तिगत) और इज्तिमाई दोनों हैसियतों से क़ौम के अख़लाक़ का बिगड़ जाना, सीरत (आचरण) व किरदार का बिगड़ जाना, मामलों का ख़राब हो जाना, इज्तिमाई निज़ाम की बन्दिशों का ढीला हो जाना और क़ुव्वतों का बिखर जाना लाज़िमी है और इसका लाज़िमी नतीजा यही हो सकता है कि क़ौम की ताक़त कमज़ोर हो जाए और दूसरी क़ौमों की ताक़त की तराज़ू में उसका पलड़ा दिन-ब-दिन हल्का होता चला जाए, यहाँ तक कि दूसरी क़ौमें उसपर ग़ालिब आ जाएँ। ऐसी हालत में भौतिक साधनों की अधिकता, डिग्री हासिल किए हुए लोगों की बहुतायत और बाहरी साज-सज्जा की चमक-दमक किसी काम नहीं आ सकती।

इन सबसे बढ़कर एक और बात भी है। क़ुरआन बहुत ही यक़ीन के साथ कहता है—"तुम ही सरबुलन्द होगे अगर तुम ईमानवाले हो।" और "अल्लाह की पार्टीवाले ही ग़ालिब होंगे।" और "जो लोग ईमान और नेक कामों से आरास्ता होंगे उनको ज़मीन की ख़िलाफ़त (हुक्मरानी) ज़रूर मिलेगी।" इस पूरे भरोसे और एतिमाद की बुनियाद क्या है? किस बिना

(आधार) पर यह दावा किया गया है कि दूसरी क़ौमें चाहे कैसे ही माद्दी वसाइल (भौतिक संसाधनों) की मालिक हों उनपर मुसलमान सिर्फ़ ईमान और नेक अमल के हथियार से ग़ालिब आ जाएँगे?

इस गुत्थी को क़ुरआन ख़ुद हल कर देता है—

"लोगो! एक मिसाल बयान की जाती है, इसको ग़ौर से सुनो! अल्लाह को छोड़कर तुम जिन चीज़ों को पुकारते हो वे सब मिलकर एक मक्खी भी पैदा करना चाहें तो नहीं कर सकते। बल्कि अगर मक्खी इनसे कोई चीज़ छीन ले जाए तो उससे वह चीज़ छुड़ा भी नहीं सकते। मदद चाहनेवाले भी कमज़ोर और जिनसे मदद चाही जाती है वे भी कमज़ोर। इन लोगों ने अल्लाह की क़द्र ही नहीं पहचानी जैसा कि उसके पहचानने का हक़ है। हालाँकि असल में अल्लाह ही क़ुदरत और इज़्ज़तवाला है।"

(क़ुरआन, सूरा-22, अल-हज, आयत-73,74)

"जिन लोगों ने अल्लाह के सिवा दूसरों को अपना कारसाज़ और संरक्षक बना लिया उनकी मिसाल मकड़ी जैसी है जो अपना एक घर बनाती है और सब घरों से कमज़ोर घर मकड़ी का है।"

(क़ुरआन, सूरा-29, अल-अनकबूत, आयत-41)

मतलब यह है कि जो लोग माद्दी और भौतिक ताक़तों पर यक़ीन रखते हैं उनका भरोसा असल में ऐसी चीज़ों पर है जो ख़ुद से किसी तरह की भी क़ुव्वत नहीं रखतीं। ऐसी बेज़ोर चीज़ों पर भरोसा करने का क़ुदरती नतीजा यह है कि वे ख़ुद भी वैसे ही बेज़ोर हो जाते हैं जैसे उनके सहारे बेज़ोर और कमज़ोर हैं। वे अपने नज़दीक जो मज़बूत क़िले बनाते हैं, वे मकड़ी के जाले की तरह कमज़ोर हैं। उनमें कभी यह ताक़त हो ही नहीं सकती कि उन लोगों के मुक़ाबले में सिर उठा सकें जो हक़ीक़ी क़द्र और इज़्ज़त रखनेवाले ख़ुदा पर भरोसा करके उठें।

क़ुरआन में अल्लाह फ़रमाता है—

"जो तागूत को छोड़कर अल्लाह पर ईमान ले आया उसने

मज़बूत रस्सी थाम ली जो कभी टूटनेवाली नहीं है।"

(क़ुरआन, सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-256)

क़ुरआन दावे के साथ यह कहता है कि जब कभी ईमानवालों और ग़ैर-ईमानवालों का मुक़ाबला होगा तो ग़लबा ईमानवालों ही को हासिल होगा।

"अगर वे लोग जिन्होंने इनकार (कुफ़्र) किया है तुमसे जंग करेंगे तो ज़रूर पीठ फेर जाएँगे और कोई यारो-मददगार न पाएँगे। यह अल्लाह की सुन्नत (तरीक़ा) है जो पहले से चली आ रही है और तुम कभी अल्लाह की सुन्नत में तब्दीली नहीं पाओगे।"

(क़ुरआन, सूरा-48, फ़तह, आयत-22,23)

"हम काफ़िरों के दिलों में रौब डाल देंगे क्योंकि उन्होंने ख़ुदाई में उन चीज़ों को शामिल कर दिया है जिनके साझी होने पर अल्लाह ने कोई सनद (प्रमाण) नहीं उतारी है।"

(क़ुरआन, सूरा-3, आले-इमरान, आयत-151)

इसकी वजह यह है कि जो शख़्स ख़ुदा की तरफ़ से लड़ता है उसके साथ अल्लाह की ताक़त होती है और जिसके साथ अल्लाह की ताक़त हो उसके मुक़ाबले में किसी का ज़ोर चल ही नहीं सकता।

"यह इसलिए कि ईमानवालों का मददगार तो अल्लाह है और काफ़िरों (विधर्मियों) का मददगार कोई नहीं ।"

(क़ुरआन, सूरा-47, मुहम्मद, आयत-11)

"जब तूने तीर फेंका तो वह तूने नहीं फेंका बल्कि ख़ुदा ने फेंका।" (क़ुरआन, सूरा-8, अल-अनफ़ाल आयत-17)

यह तो नेक मोमिनों की ताक़त का हाल है। दूसरी तरफ़ यह भी अल्लाह का क़ानून है कि जो शख़्स ईमानदार होता है, जिसकी सीरत (चरित्र) पाकीज़ा होती है, जिसके अमल (कर्म) नफ़सानियत (मनेच्छाओं) की गन्दगियों से पाक होते हैं, जो बुरी इच्छाओं और ख़ुदग़र्ज़ियों के बजाए ख़ुदा के मुक़र्रर किए हुए क़ानून की ठीक-ठीक पैरवी करता है, उसकी मुहब्बत

दिलों में बैठ जाती है, दिल आप ही आप उसकी तरफ़ खिंचने लगते हैं, निगाहें उसकी तरफ़ एहतिराम से उठती हैं, मामलों में उसपर भरोसा किया जाता है, दोस्त तो दोस्त दुश्मन भी उसको सच्चा समझते हैं और उसके इन्साफ़, उसकी पाकदामनी और उसकी वफ़ादारी पर भरोसा करते हैं। क़ुरआन में है—

"जो लोग ईमान ले आए हैं और नेक अमल कर रहे हैं अल्लाह उनकी मुहब्बत दिलों में डाल देगा ।"

(क़ुरआन, सूरा-19, मरयम, आयत-96)

"ईमान लानेवालों को अल्लाह एक पक्की बात की बुनियाद पर दुनिया और आख़िरत दोनों में मज़बूती देता है।"

(क़ुरआन, सूरा-14, इबराहीम, आयत-27)

"जो भी नेक अमल करेगा, चाहे वह मर्द हो या औरत, शर्त यह है कि हो वह मोमिन (ईमानवाला) उसे हम दुनिया में पाक और बेहतरीन ज़िन्दगी बसर कराएँगे और (परलोक में) उसके बेहतरीन कामों का बेहतरीन बदला देंगे जो वे करते रहे।"

(क़ुरआन, सूरा-16, अन-नह्ल, आयत-97)

मगर ये सब किस चीज़ के नतीजे हैं? सिर्फ़ ज़बान से 'ला इलाहा इल्लल्लाह' कहने के नहीं। मुसलमानों के से नाम रख लेने और रहन-सहन के कुछ ख़ास तौर-तरीक़े इख़्तियार करने और कुछ गिनी-चुनी रस्मों को अदा कर लेने के नहीं, क़ुरआन मजीद इन नतीजों के सामने आने के लिए ईमान और नेक अमल की शर्त लगाता है, उसका मंशा यह है कि 'ला इलाह इल्लल्लाह' की हक़ीक़त तुम्हारे दिल और रूह में इतना रच-बस जाए कि तुम्हारे विचार, अख़लाक़ और मामलात सबपर इसी का ग़लबा हो, तुम्हारी ज़िन्दगी इसी पाक कलिमे के साँचे में ढल जाए, तुम्हारे मन में कोई ऐसा ख़याल न आने पाए जो इस कलिमे के मानी से अलग हो और तुमसे कोई ऐसा अमल न होने पाए जो इस कलिमे के तक़ाज़े के ख़िलाफ़ हो। 'ला इलाह इल्लल्लाह' को ज़बान से अदा करने का नतीजा यह होना चाहिए कि

तुम्हारी ज़िन्दगी में इसके साथ एक इन्क़िलाब बरपा हो जाए। तुम्हारी रग-रग में तक़्वा (ईश-भय) की रूह सरायत (समाविष्ट) कर जाए। अल्लाह के सिवा तुम्हारा हाथ किसी के आगे न फैले। अल्लाह के सिवा किसी का ख़ौफ़ तुम्हारे दिल में न रहे। तुम्हारी मुहब्बत और तुम्हारी नफ़रत अल्लाह के सिवा किसी और के लिए न हो। अल्लाह के क़ानून के सिवा तुम्हारी ज़िन्दगी पर किसी और का क़ानून लागू न हो। तुम अपने मन की सारी ख़ाहिशों और उसके मर्ग़ूबात (आकर्षक) और महबूब चीज़ों को अल्लाह की ख़ुशी पर क़ुरबान कर देने के लिए हर वक़्त तैयार हो। अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल॰) के अहकामात (आदेशों और निर्देशों) के मुक़ाबिले में तुम्हारे पास सुनने और अमल करने के सिवा कोई और बात और काम न हो। जब ऐसा होगा तो तुम्हारी ताक़त सिर्फ़ तुम्हारे अपने मन और जिस्म की ताक़त न होगी बल्कि उस हाकिमों के हाकिम की क़ुव्वत होगी जिसके आगे ज़मीन और आसमान की हर चीज़ चाहे-अनचाहे झुकी हुई है और तुम्हारी ज़ात उस ज़मीन और आसमान के नूर के जलवों से भर जाएगी जो पूरी दुनिया का हक़ीक़ी (वास्तविक) महबूब और माशूक़ है।

नबी (सल्ल॰) और ख़ुलफ़ाए-राशिदीन (आपके प्यारे सहाबा रज़ि॰) के दौर में यही चीज़ मुसलमानों को हासिल थी फिर इसका नतीजा जो कुछ हुआ इतिहास के पन्ने इसके गवाह हैं। उस ज़माने में जिसने 'ला इलाह इल्लल्लाह' कहा उसकी काया पलट गई। कच्चे ताँबे से वह यकायक सोना बन गया। उसकी ज़ात में वह कशिश पैदा हुई कि दिल उसकी तरफ़ खिंचने लगे। उसपर जिसकी नज़र पड़ती वह महसूस करता कि मानो तक़्वा और परहेज़गारी और सच्चाई को मुजस्सम (साकार) देख रहा है। वह अनपढ़, मुफ़लिस, फ़ाक़े करनेवाला, मोटा-झोटा पहननेवाला और चटाई पर बैठनेवाला होता मगर फिर भी उसकी हैबत (ख़ौफ़) दिलों में ऐसी बैठती कि बड़े-बड़े शान-शौकतवाले हुक्मरानों को नसीब न थी। एक मुसलमान का वुजूद मानो एक चिराग़ था कि जिधर वह जाता उसकी रौशनी उसके आप-पास के इलाक़ों में फैल जाती और उस चिराग़ से सैकड़ों-हज़ारों चिराग़ रौशन हो जाते। फिर जो उस रौशनी को क़बूल न करता और उससे टकराने का साहस

करता तो उसको फ़ना कर देने की क़ुव्वत भी उसमें मौजूद थी।

ऐसी ही ईमानी क़ुव्वत और सीरत की ताक़त रखनेवाले मुसलमान थे कि जब वे साढ़े तीन सौ से ज़्यादा न थे तो उन्होंने तमाम अरब को मुक़ाबले का चैलेंज दे दिया और जब वे कुछ लाख की तादाद को पहुँचे तो सारी दुनिया पर छा जाने के हौसले से उठ खड़े हुए और जो ताक़त उनके मुक़ाबले पर आई चूर-चूर हो गई।

जैसा कि कहा जा चुका है कि मुसलमान की अस्ली ताक़त यही ईमान और नेक सीरत की ताक़त है, जो सिर्फ़ एक 'ला इलाह इल्लल्लाह' की हक़ीक़त दिल में बैठ जाने से हासिल होती है। लेकिन अगर यह हक़ीक़त दिल में घर न करे और सिर्फ़ ज़बान पर ये लफ़्ज़ जारी हों, मगर ज़हनियत और अमली ज़िन्दगी में कोई तब्दीली न आए, 'ला इलाह इल्लल्लाह' कहने के बाद भी इनसान वही का वही रहे जो उससे पहले था और उसमें और 'ला इलाह इल्लल्लाह' का इनकार करनेवालों में अख़लाक़ी और अमली हैसियत से कोई फ़र्क़ न हो, वह भी उन्हीं की तरह ग़ैरुल्लाह के आगे गरदन झुकाए और हाथ फैलाए उन्हीं की तरह ग़ैर-ख़ुदा से डरे और ग़ैर-ख़ुदा की ख़ुशी चाहे और ग़ैर-ख़ुदा की मुहब्बत में गिरफ़्तार हो, उन्हीं की तरह बुरी ख़ाहिशों का बन्दा हो और अल्लाह के क़ानून को छोड़कर इनसानी क़ानूनों या अपने मन की इच्छाओं की पैरवी करे, उसके विचारों और इरादों और नियतों में भी वही गन्दगी हो जो एक ग़ैर-मोमिन के विचारों, इरादों और नियतों में हो सकती है और उसकी बातें, उसके अमल और मामले भी वैसे ही हों जैसे एक ग़ैर-मोमिन के होते हैं तो फिर मुस्लिम को ग़ैर-मुस्लिम पर फ़ौक़ियत (श्रेष्ठता) किस बुनियाद पर हो? ईमान और तक़वा की रूह न होने की सूरत में एक मुस्लिम वैसा ही एक इनसान है जैसा एक ग़ैर-मुस्लिम है। इसके बाद मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम का मुक़ाबला सिर्फ़ जिस्मानी ताक़त और माद्दी वसाइल (भौतिक संसाधनों) के ऐतिबार से होगा और इस मुक़ाबले में जो ताक़तवर होगा वह कमज़ोर पर ग़ालिब आ जाएगा।

इन दोनों हालतों का फ़र्क़ इतिहास के पन्नों में इतना उभरा हुआ है कि एक नज़र में देखा जा सकता है, या तो मुट्ठी भर मुसलमानों ने बड़ी-बड़ी

हुकूमतों के तख़्ते उलट दिए थे और अटक के किनारे से लेकर अटलांटिक
महासागर के किनारों तक इस्लाम फैला दिया था, या अब करोड़ों मुसलमा
दुनिया में मौजूद हैं और ग़ैर-मुस्लिम ताक़तों से दबे हुए हैं। जिन आबादिय
में करोड़ों मुसलमान बसते हैं और उनको बसे हुए सैकड़ों साल गुज़र चुके
हैं वहाँ अब भी कुफ़्र और शिर्क मौजूद है।

(तर्जमानुल-कुरआन, शव्वाल-53 हि॰, जनवरी 1935 ई.

■■